कला शिक्षा : बच्चों की नजर से

❑ देवी प्रसाद

विगत दशकों के शैक्षिक नवाचारों और शिक्षण-प्रयोगों का एक प्रमुख अवदान यह है कि इन्होंने कला-शिक्षण को प्राथमिक शिक्षा में पुन: प्रतिष्ठित किया है । यह जानकर सुखद आश्चर्य होता है कि गांधीजी द्वारा प्रणीत बुनियादी शिक्षा में कला-शिक्षण को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । देवी प्रसाद एक शिक्षाविद् अध्यापक रहे हैं जिन्होंने कला-शिक्षण के पाश्चात्य प्रयोगों और शांति-निकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर और विख्यात चित्रकार नंदलाल बसु के कला-अनुभवों को बुनियादी तालीम में समाहित किया । बुनियादी शिक्षा से संबद्ध देवी प्रसाद का अनुभव और चिंतन उनकी पुस्तक 'शिक्षा का वाहन'कला' (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया) में संकलित है । यह लेख इसी पुस्तक का एक अध्याय है ।

'' बालक की कलाकृति की सबसे सुंदर चीज उसकी गलतियां हैं । और जितना इन गलतियों को शिक्षक सुधारता जायेगा, उतनी ही बेजान, मंद और व्यक्तित्वहीन वह कृति बन जायेगी । ''

- फ्रांज सिजेक

अभी तक सब कुछ सयानों की नजर से देखा। शिक्षक की दृष्टि कैसी होनी चाहिए , इसी बात पर चर्चा की । लेकिन शिक्षा देनी है, वह सयाना नही है। इसीलिये उसकी दृष्टि सयानों जैसी नहीं है ।

जितना सोचकर या काट-छांटकर सयानों की नजर तैयार होती है,बच्चों की उस तरह नहीं होती। वह इस काम का नतीजा 'यह होगा' या 'इसके जरिये ऐसे संस्कार पड़ेंगें', यह भी नहीं देखता। बच्चा तो हर समय नये-नये अनुभवों की खोज में रहता है। हर चीज के साथ परिचय करना चाहता है। वह जिस चीज से परिचय करता है, उसमें आनंद ढूंढ़ता है और अगर उसे उस चीज या काम में आनंद मिल जाता है, तो उसे दोबारा करता है और नये अनुभव पाता है। बच्चा अपने चारों तरफ की उन-उन चीजों की तरफ तेज निगाह से देखता है, जिनको सयाने नजर उठाकर भीं नहीं देखते, बल्कि जिनके बारे में सयानों को सचेतता भी नहीं होती। असल में यह बात है कि बच्चे की दुनिया एक तरह की है और बड़े की दूसरी तरह की। दोनों ही अपनी-अपनी दुनिया में रहते हैं। दोनों के देखने के तरीके और देखने के विषय भी अलग-अलग होते हैं। मेरा कहने का मतलब यह नहीं कि बच्चा जिस चीज को देखता है, बड़ा उसे नहीं देखता । चीजें दोनों एक ही हैं । वही लालटेन बड़ा देखता है, वही बच्चा। लेकिन बड़ा उसको किसी और दृष्टि से देखता है, छोटा किसी और से। उदाहरण के लिए बड़ा जहां यह देखता है कि लालटेन की रोशनी साफ है या नहीं, वहां बच्चा शायद उसके ऊपर चलने वाले एक कीड़े की तरफ एकटक निगाह से देखता रहता है। या शायद लालटेन की चिमनी के गंदे होने के कारण उस पर जो कुछ दाग हो गये हों, उन्हीं को देखकर आनंद लेता है। अगर हठात लालटेन बुझ जाय, तो बच्चे की खुशी उस लालटेन के बुझने के अनुभव को पाने में होती है। वह 'हो-हो' कर आनंदित हो उठता है, जब कि सयानों को लालटेन के बुझने से गुस्से का अनुभव होता है। अर्थ यह है कि बच्चे के लिए हर पल नये अनुभव का समय है।

एक और बात है। जिस तरह बच्चे की दुनिया सयाने की दुनिया से अलग है, उसी तरह अच्छे और बुरे, सुंदर या असुंदर का नाप भी सयाने का बच्चे के जैसा नहीं होता। जिस चीज को देखने में बड़ों को घृणा होती है, बच्चे को उसी में मजा आ सकता है। जैसे कि जब एक बच्चा बारिश के कीचड़ में खेल रहा हो या किसी 'मैली' चीज में हाथ सानकर मजा ले रहा हो या एक केंचुए को उंगली से इधर-उधर कर रहा हो, उस समय कोई सयाना उधर से गुजरता हो, तो अक्सर ही वह उस बच्चे को डांट देता है कि यह क्या गंदा काम कर रहा है ? दोनों की दुनिया और दोनों की नजर अलग-अलग है।

बच्चे के लिय ऐसे विचार, कि कला की आध्यात्मिक बाजू ऐसी हो या उसके आकार के पहलू की तरफ उसकी ऐसी दृष्टि हो, आदि बिल्कुल कीमत नही रखते। वह तो यह देखता है कि क्या

इसमें मुझे आनंद मिलेगा ? अगर उसे आनंद मिलता है तो वह उसमें रम जाता है।

अपनी इस चर्चा को अभी हम चित्रकला और ड्राइंग तक ही सीमित रखेंगे, हमारा वही विषय है। कला में बच्चा आनंद लेता है, यह तो उसी समय पता चल जाता है, जबकि उसके सामने रंग और कागज रख दें और कहें कि लो, यह इस्तेमाल करो। शायद ही कोई बच्चा ऐसा होगा, जो इस मौके को चूकना पसंद करेगा। (आगे चलकर चर्चा करेंगे कि कुछ बच्चे पहले रंग और कागज पर हाथ भी लगाने की हिम्मत क्यों नहीं करते ? औसत बच्चा रंग और कागज देखते ही खुश हो जाता है। कुछ विशेष अपवाद तो छोड़ते ही पडते हैं।)

बच्चे को कीचड़ में खेलने से जो 'ठंडा' और' मुलायम' छूने का अनुभव होता है, उसी में उसे आनंद मिलता है। चित्र या ड्राइंग बनाने में भी उसे कई तरह से आनंद और संतोष मिलता है। किस-किस तरह उसे आनंद मिलता है, यह देखें ।

बढ़ई का बच्चा, जबकि हथौड़ा पकड़ना भी नहीं जानता, हथौड़े का क्या काम है, यह भी नहीं जानता, तभी से वह अपने पिता को काम करते देख उसके पास जाकर बैठ जाता है। धीरे-धीरे एक दिन हथौड़ा उठाकर उल्टा सीधा चलाने लगता है । वह अपने पिता की तरह करता है। इस शुरू की अवस्था में भी क्या वह हथौड़े को ध्येय यानी कुछ चीज बनाने के विचार से चलाता है ? नहीं । वह हथौड़ा चलाने में 'यानी काम के करने' में जो आनंद है, वह लेता है हाथ-पैर चलाना, उंगलियों को चलाना, यही उसके लिए एक मजे की बात है ।

कई किस्म के काम होते है । किस्म-किस्म के काम करने से मनुष्य की अलग-अलग भावनाओं,वृतियों और कर्मेंद्रियों को संतोष मिलता है। बढ़ई के औजार इस्तेमाल करने से एक किस्म का और पेंसिल,कागज तथा रंग इस्तेमाल करने से और एक किस्म का संतोष होता है। दोनों तरह के' करने ' में ही आनंद आता है। बच्चा किस्म-किस्म की प्रवृतियों को करने से आनंद पाता है। चित्रकला और ड्राइंग का काम करने का जो आनंद है, वह बच्चे के लिए एक खास कीमत रखता है।

बच्चा बड़ा कल्पनाशील होता है। वह हर क्षण नयी-नयी कल्पनाओं में बिताता है। एक मिट्टी का घर बनाता है, तो उसे किला और राजा का महल समझ लेता है। कुछ तिनके खड़े करके कहता है कि देखो, राजा के सिपाही आ रहे है। और अगर एक राजा और दूसरे राजा के बीच युद्ध कराना चाहता है ।, तो दूसरी दिशा में और कुछ तिनके खड़े कर देता है । कहता है, दो राजाओं की फौजें लड़ रही है। बालू मे पैर घुसाकर सुराख बना देता है । और वह उसका महल हो जाता है ।

कोई काम पूरा करने के बाद और खासतौर पर निर्माणात्मक काम पूरा करने पर बनायी हुई चीज को देखकर एक आनंद होता है बच्चे के सामने रखा सामान -लकड़ी और बढ़ई के औजार, गीली मिट्टी या रंग, कूंची और कागज उसे एक तरह का निमंत्रण देते है आह्वान देते हैं। वे उसे यह कहते हुए सुनाई देते हैं :''हमें लेकर क्या बना सकते हो ?'' बच्चा फौरन लगकर जो कुछ बनाता है , उसे देखकर उसके मन में और एक भावना जागती है। वह मन -ही-मन कहता है:''देखा,बना दिया ।'' चीज पूरी करने के बाद यह 'मै कुछ कर सकता हूँ' की भावना बच्चे के अनंद का झरना है। उसे यह विश्वास कि 'वह निपुण है', आनंद से भर देता है । इसका साफ सबूत तब मिलता है , जब कि उनकी अपनी चित्र-प्रदर्शनी बच्चे खुद देखने जाते है। उनका सबसे पहला काम होता है कि यह पता चलाये कि उनका अपना चित्र वहां है या नहीं । और जब मिल गया, तो उसी के सामने खड़े होकर उसे निहारते रहते हैं। ऐसे मौकों पर बच्चों को उनके अपने चित्रों के बारे में इस तरह के वाक्य अक्सर कहते हुए सुना जाता है:'' कितना अच्छा लगता है । ओ ! हो! मेरा भी चित्र है यह देखो।''

बच्चे के पास शब्दों की भाषा कम होती है। किंतु उसके पास दूसरी ऐसी भाषा होती है, जो उसके मन मे भरी कहानियों और अनुभवों को दूसरों को बता सके । एक बात देखेंगे। बच्चे के ये अनुभव या उसकी ये कहानियां शब्दों से नही, बल्कि 'आकारों' से भरी होती है। जैसे अगर उसके अनुभव या कहानी में एक पहाड़ आता है, तो उसके सामने पहाड़ शब्द नहीं, बल्कि पहाड़ वस्तु का आकार होता है। वह उसे दूसरों को बताते समय तभी पूरा संतोष मानेगा, जबकि जो मन में है, वही प्रकट कर सके। मन में तो चीज का आकार है, चीज का नाम नहीं। नाम का स्थान गौण है। इसीलिये देखा गया है कि बच्चे जब चित्र के द्वारा 'वर्णन' करते हैं, तब लगता है मानों पूरा-पूरा बता पा रहे हैं।

यह तो आदमी की वृति है कि वह अपने अनुभवों को दूसरों को बताना चाहता है। बच्चों में वह इच्छा और अधिक मिकदार में होती है और उनका यह वर्णन करना आकारों द्वारा ही सबसे अधिक सफलतापूर्वक होता है। यही उनका एक बड़ा आनंद का साधन है।

हमारे एक विद्यार्थी की ही बात थी। एक दिन उसने एक चित्र बनाया जिसका विषय था :''बारिश हो रही है। एक लड़का छाता लेकर सामने पेड़ से बंधे बैल को बारिश से हटाने के लिए जा रहा है। हठात पैर फिसला और बेचारा गिर गया। हाथ का छाता भी उड़कर दूर जा पड़ा'' यह था चित्र । इस छोटे कलाकार का यह चित्र जब करीब-करीब पूरा हो रहा था, तो उसने उठाकर उसे दूर रखा और खुद पीछे दूर हटकर गर्दन इधर-उधर हिला, चित्र को देखने लगा। यह बात उसे मालूम नहीं थी कि मैं उसे अच्छी तरह देख रहा था। वह चित्र के 'विषय' में इतना लीन हो गया कि जो चित्र मे घट रहा था, उसे अपने में भी अनुभव करने लगा। मैंने देखा कि जिस तरह चित्र का लड़का फिसलकर गिर रहा था, उसी तरह हठात वह खुद भी बार-बार गिरने का अनुभव लेने लगा । यह नाटक करने में उसे जो आनंद मिल रहा था, वह सचमुच गहरा था। एक दूसरे विद्यार्थी ने एक मोटर का चित्र बनाया। मै देख रहा था कि बनाते-बनाते वह खुद बार-बार ड्राईवर के हैंडल पर हाथ चलाने का नाटक करता और मुंह से मोटर के भौंपू की तरह आवाज निकालता था। यह सब देखकर यही महसूस होता है कि बच्चे चित्र बनाते समय स्वयं वह वस्तु बन जाते हैं, जिसका वह चित्र बनात रहते हैं । चित्र के 'विषय' की लहरें उनके अपने शरीर में, मन में नाटक खेलने लगती हैं। यह पहलू बड़े कलाकरों में पाया जाता है, चीन की कला पर चर्चा करने वाले इतिहासकार इस तरह की कई कहानियां बताते हैं, जिनमें ऐसे कलाकारों का जिक्र किया गया है, जो अगर घोड़े के चित्र बनाने में उस्ताद हों, तो उनके अपने शरीर में घोड़े के हिलने-डुलने की लहरें समा जाती हैं। वे खुद भी घोड़े जैसा महसूस करते है । इस तरह की अनेक कहानियां कलाकारों के बारे में पायी जाती है । यह चित्र के' नाटक' का पहलू बच्चे को अत्यन्त आनंद का अनुभव प्रदान करता हैं।

कला-प्रवृत्तियों द्वारा बच्चे की ये भावनाएं सफलतापूर्वक प्रकट हो जाती हैं। अच्छी शिक्षा का यह काम है कि योजना ऐसी बने, जिससे बच्चे की ये भावनाएं सुंदर और स्वस्थ रूप लेकर बाहर निकले। इस बात को एक उदाहरण द्वारा पेश करें । अगर एक बच्चे को जरूरत से ज्यादा 'स्फूर्ति' हो और वह बिना कारण इधर-उधर चीजों को पटकता-पीटता फिरता हो, तो शिक्षक का काम है कि वह बच्चे को इस पटकने-पीटने की भावना को कोई प्रवृत्ति देकर सुंदर रूप दे।

बच्चा बड़ा कल्पनाशील होता है। वह हर क्षण नयी-नयी कल्पनाओं में बिताता है। एक मिट्टी का घर बनाता है, तो उसे किला और राजा का महल समझ लेता है। कुछ तिनके खड़े करके कहता है कि देखो, राजा के सिपाही आ रहे है। और अगर एक राजा और दूसरे राजा के बीच युद्ध कराना चाहता है ।, तो दूसरी दिशा में और कुछ तिनके खड़े कर देता है । कहता है, दो राजाओं की फौजें लड़ रही है। बालू मे पैर घुसाकर सुराख बना देता है । और वह उसका महल हो जाता है । कुछ कल्पना करके इन प्रवृतियों को शुरू करता है और इन्हें करते-करते उसे नयी-नयी कल्पनाएं आती रहती है। ये साधन - मिट्टी, रेत, तिनके आदि - उसे कल्पना करने में मदद करते है।

चित्र बनाते समय भी बच्चे के शुरू के वर्षो में, जब कि उसके चित्र बड़ों की नजर में कीरम-कांटे ही होते है, बच्चा उन कीरम कांटें में पहाड़, नदी, नाले और आकाश तक को देख लेता है। बच्चों के इन चित्रों का विस्तार से जिक्र तो आगे चलकर करेंगें, किंतु यहां यह बताना चाहते हैं कि इस तरह चित्र बनाना बच्चों की कल्पना-शक्ति को प्रोत्साहन देता है। इस कल्पना-जगत में इस इस तरह की कवि-कल्पना करने में बच्चों को आनंद का लाभ होता है।

मनुष्य के मन में हर समय कुछ-न-कुछ भावनाएं उठती रहती हैं। यह स्वाभाविक है कि ये भावनाएं किसी-न-किसी तरह प्रकट होती रहें । इन्हें कोई-न-कोई निकास का रास्ता चाहिये ही । अगर आज का सूर्योदय देखकर कुछ विशेष भावनाएं उठें, तो तुरंत इच्छा होती है कि किसी को कहकर उन्हें व्यक्त करूं। कवि हो, तो कविता करके अपनी भावनाओं को रूप देगा और चित्रकार चित्र बनाकर । इस तरह अनेक माध्यमों के द्वारा इन भावनाओं का प्रकटन किया जाता है। फिर अनेक नयी-नयी भावनाएं उत्पन्न होती रहती है ।

जीवन है ही लेना और देना । प्रकृति से लेना और उसे दे देना, यही जीवन है । एक घड़े को पानी से भरें, तो वह भर जायेगा। पूरा भरने के बाद वह और नहीं 'भरेगा' । वह पानी लेने से इनकार कर देगा। अगर उसमें और भरना है, तो उसे पहले खाली करना पड़ेगा। यानी लेने के लिए देना पड़ेगा। और अगर नया पानी लेना नहीं हुआ, तो पहले का पानी धीरे-धीरे सड़ता रहेगा, उसमें दुर्गंध आ जायेगी । इसी तरह आदमी को भी अपनी भावनाएं निकालनी ही पड़ती हैं । केवल सिद्धयोगी ही अपनी बुद्धि के द्वारा, अपने आत्मबल के द्वारा, अपने आत्मबल के द्वारा इनका भीतर-ही-भीतर निराकरण कर सकता है। सड़ने का मौका ही वहां नहीं होता । किन्तु आमतौर पर साधारण व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता । खासतौर पर बच्चे के लिए वह बात लागू हो ही नहीं सकती, क्योंकि वह इन सब

चीजों के बारे में सज्ञान नहीं होता । वहां बुद्धि के द्वारा मन को दबा देने का सवाल ही नहीं खड़ा होता । उसे तो किसी-न-किसी तरह इन भावनाओं को रूप देकर बाहर निकलना ही पड़ेगा।

कला-प्रवृत्तियों द्वारा बच्चे की ये भावनाएं सफलतापूर्वक प्रकट हो जाती हैं। अच्छी शिक्षा का यह काम है कि योजना ऐसी बने, जिससे बच्चे की ये भावनाएं सुंदर और स्वस्थ रूप लेकर बाहर निकले। इस बात को एक उदाहरण द्वारा पेश करें। अगर एक बच्चे को जरूरत से ज्यादा 'स्फूर्ति' हो और वह बिना कारण इधर-उधर चीजों को पटकता-पीटता फिरता हो, तो शिक्षक का काम है कि वह बच्चे को इस पटकने-पीटने की भावना को कोई प्रवृत्ति देकर सुंदर रूप दे। खूब ठोक-पीट करने का काम देने से भी उसकी यह वृत्ति काफी हद तक आत्म-प्रकटन पा सकेगी । बगीचा बनाने में खोदने का काम करना पड़ता है । मूर्ति बनाने में खुदाई आदि, कुम्हार-काम में खूब सारी मिट्टी लेकर पसीना तक निकाला जा सकता है । इस तरह के कई काम हो सकते हैं । चित्रकला द्वारा भी इसका अच्छा सुंदर रूप बन सकता है । वह शायद वैसा ही चित्र बनायेगा, जिसमें खूब मार-काट, ठोक-पीट आदि का विषय हो । किस भावना को किस प्रवृत्ति द्वारा निकास मिलेगा, यह तो शिक्षक मौके पर ही ठीक कर सकता है । किन्तु यहां तो हम यही कहना चाहते हैं कि चित्रकला भी इन भावनाओं के निकास का सुंदर और स्वस्थ माध्यम है । जब ये भावनाएं निकल जाती हैं, तब आनंद का जो अनुभव होता है, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है । बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के लिए यह आनंद का अनुभव, जिसे तृप्ति का बोध भी कह सकते हैं, बहुत जरूरी है । यहां तक अनुभव हुआ है कि इन प्रवृत्तियों के द्वारा बच्चे के दिल में अगर कोई भय भी बैठा हुआ हो, तो वह भी प्रकट होकर दूर हो जाता है।

बच्चा कला-प्रवृत्तियों में क्यों रुचि लेता है, इसके कारण ऊपर बताये हैं । आखिर में एक प्रयोग का जिक्र करता हूं । प्रयोग था कि बच्चे पुस्तकें लिखें । विषय-वस्तु तैयार करना, उसे चित्रित करना, सुंदर ढ़ंग से लिखना, जिल्द बनाकर मुखपृष्ठ तैयार करना और उन्हें प्रकाशित करना- इतना काम था । वर्ग में तेरह बच्चे थे, जिनकी उम्र औसत चौदह साल थी । शाला से अलग समय का जिक्र है । एक विद्यार्थी से चर्चा करते-करते पुस्तकें लिखने पर बातचीत चल पड़ी । मैंने उसे बताने की कोशिश की कि पुस्तक लिखना कोई बड़ी बात नहीं है, अगर वह भी चाहे तो नयी पुस्तक तैयार कर सकता है । यह सुनकर उसे विचार बहुत पसंद आया और उसने तय कर लिया कि वह जरूर एक पुस्तक लिखने की कोशिश करेगा । तीसरे दिन इस विद्यार्थी ने अपनी टोली के सामने इस विचार को रखा। सभी बच्चे बड़े जोश में आ गये । इनमें से छह ने तय किया कि वे जरूर अपनी-अपनी पुस्तक लिखेंगे । सबने अपना-अपना विषय चुन लिया । और अगले दिन से चित्र बनाना शुरु कर दिया । सोलह दिन के बाद छह पुस्तकें तैयार हो गयीं । लेख, कहानी, कविता आदि बच्चे अक्सर लिखते हैं। कहानियों आदि को चित्रित करने के लिए भी किसी-किसी स्कूल में प्रोत्साहन दिया जाता है । किन्तु ये बालक रामायण और महाभारत भी लिख डालेंगे, हमने भी कल्पना नहीं की थी । ये बच्चे खुदतो इसके बारे में सोच ही क्या सकते थे। इस काम का पूरा विवरण देने की यहां जरूरत नहीं है । इन पुस्तकों का स्तर कैसा था, यह भी कहने की आवश्यकता नहीं । मुझे तो लगता है कि आमतौर पर जैसा साहित्य बच्चों के लिये तैयार हो रहा है, उनमें से अच्छे-अच्छे स्तर के साहित्य के साथ इनकी तुलना हो सकती है ।

यहां तो बच्चों के ऊपर इस प्रयोग का क्या असर हुआ, यह बताना मुख्य बात है । जिस दिन पुस्तकें बनकर तैयार हुईं, एक बच्चे ने मुझसे अत्यंत भावुकतापूर्ण आवाज में कहा : '...... मुझे कल तक भी नहीं मालूम था कि मेरी पुस्तक इतनी अच्छी बनेगी ।' दूसरे बच्चों ने खूब चिल्लाकर कहा: 'हां, हां, सचमुच हमें तो विश्वास ही नहीं था कि पुस्तकें बनेंगी या न जाने क्या होगा ...... ।

बच्चों को यह तो आत्म-दर्शन हुआ, यह मुख्य चीज है। बच्चा एक खजाना है । उसमें बहुत शक्ति भरी पड़ी है । वह ऐसे काम कर सकता है, जो हम सयाने होने के कारण संकोच से नहीं कर पाते । इन पुस्तकों को लिखने के बाद इस आत्म-दर्शन से उन्हें पता चला कि उनके अंदर कितनी शक्ति है । मैंने इस चीज को पहले भी अक्सर महसूस किया था । कला का हर काम व्यक्ति को आत्म-दर्शन कराता है। अपने अंदर जो है, उसका बाहर प्रकट हो जाना ही आत्म-प्रदर्शन की प्रक्रिया है। किन्तु ऊपर लिखे गये प्रयोग के अनुभव से मुझे इस पहलू की शक्ति का पता चला । इस तरह का आत्म-दर्शन बच्चे का आनंद तो देता ही है, साथ ही साथ उसके संपूर्ण विकास का एक बहुत बड़ा जरिया भी बन जाता है ।

बच्चे को यह महसूस हो जाना कि उसके अंदर इतना सौंदर्य, इतनी शक्ति है, उसे और सुंदर और शक्ति शाली बनाता है।

कला-शिक्षा के द्वारा बच्चे का जो समग्र विकास होता है, उसमें आनंद-प्राप्ति का पहलू अत्यंत महत्वपूर्ण है । अधिकतर बच्चे कला-प्रवृत्तियों में इसीलिये रस लेते हैं कि उन्हें द्वारा आनंद मिलता है । इस अध्याय में हमने कला-प्रवृत्तियों के द्वारा किस तरह आनंद लाभ होता है, उसका कुछ जिक्र किया। इस तरह और भी कुछ बातें हो सकती हैं । किन्तु अगर शिक्षक को यह विश्वास हो जाये कि बच्चे का आनंद महसूस करना उसके आंतरिक विकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम होता है, तो शिक्षा में कला-प्रवृत्तियों का उचित स्थान आसानी से बन जायेगा । ◆